**ओ३म्**

**“वैदिक धर्म ही विद्या पर आधारित सत्य व यथार्थ धर्म”**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 संसार में अनेक मत व मतान्तर प्रचलित हैं। यह सभी मत कभी न कभी किसी न किसी मनुष्य व उनके अनुयायियों द्वारा प्रवृत किये गये हैं। देश व समाज में धर्म की प्रवृत्ति मनुष्यों के द्वारा नहीं अपितु संसार के रचयिता ईश्वर द्वारा ही हो सकती है वा होती है। इसका कारण है कि ईश्वर सर्वव्यापक, निराकार, सर्वज्ञ, सच्चिदानन्दस्वरूप व सर्वशक्तिमान है। सृष्टि का मूल कारण प्रकृति भी उसके अधीन वा पूर्ण नियंत्रण में है। इस कारण प्रकृति से ही ईश्वर ने अनादि चेतन जीवों के सुख भोग के लिए सृष्टि को रचा है। उसी सर्वव्यापक व सृष्टिकर्ता ईश्वर ने अनादि चेतन जीवात्माओं को उनके पूर्व कर्मानुसार मनुष्यादि नाना प्रकार के शरीर सुखादि के भोग करने के लिए प्रदान किये हैं। मनुष्य को धर्म व अधर्म का ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में ही होना आवश्यक एवं अनिवार्य है और उसका ज्ञान कराना ईश्वर का दायित्व है और कर्तव्य भी है। यदि वह कराता है तो ईश्वर है और सभी मनुष्यों का उपासनीय है और यदि नहीं कराता तो फिर वह ईश्वर ही नहीं है। ईश्वर ने सृष्टि के आदि में मनुष्य को धर्म व अधर्म, कर्तव्य व अकर्तव्य आदि का ज्ञान कराया था। वह ज्ञान उसने वेद के रूप में आदि चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को दिया था। वेदों का वह ज्ञान सत्य व यथार्थ मान्यताओं पर आधारित है। वह ज्ञान व विज्ञानपरक एवं सृष्टिक्रम के सर्वथा अनुकूल, युक्ति एवं तर्कसंगत है। ऋषि दयानन्द ने वेदों की महत्ता पर अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित वेद भाष्य में भी सम्यक प्रकाश डाला है। अतः ईश्वर से धर्म अर्थात् मनुष्यों का आचार शास्त्र सृष्टि के आरम्भ में ही वेद के रूप में मिल गया था। ईश्वर प्रदत्त वेद रूपी धर्म ज्ञान अपने आप में पूर्ण एवं सभी प्रकार के दोषों से मुक्त है। उस पूर्ण ज्ञान के बाद किसी अन्य प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता ही नहीं है और न संसार के किसी मनुष्य या विद्वान अथवा मत-मजहब के प्रवर्तक में यह योग्यता व क्षमता ही होती है कि वह ईश्वर के समान धर्म आदि का यथार्थ व सत्य उपदेश कर सके। सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर से प्राप्त धर्म ज्ञान ही वेद के रूप में आज विद्यमान है जिसके हिन्दी व अंग्रेजी आदि भाषाओं में भाष्य व भाषान्तर ही आर्य विद्वानों के किये हुए उपलब्ध हैं।

 वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है। मनुस्मृति में वेदों के आधार पर धर्म के 10 लक्षण कहे गये हैं। धर्म के लक्षणों से संबंधित मनुस्मृति का श्लोक है ‘धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रयनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।’ महर्षि व राजा मनु जी ने इस श्लोक में वेदों के आधार पर कहा है कि धर्म के कुल 10 प्रमुख लक्षण हैं। पहला धैर्य अर्थात् सुख-दुःख व हानि-लाभ में भी व्याकुल होकर धर्म को न छोड़ना किन्तु धैर्य से धर्म ही में स्थिर रहना, दूसरा क्षमा अर्थात् निन्दा-स्तुति, मान-अपमान का सहन करके धर्म ही करना। तीसरा दमः अर्थात् मन को अधर्म से सदा हटाकर धर्म में ही प्रवृत्त रखना। धर्म का चौथा लक्षण अस्तेयम् अर्थात् मन-कर्म-वचन से अन्याय और अधर्म से पराये द्रव्य का स्वीकार न करना, पांचवा शौचम् अर्थात् राग-द्वेषादि के त्याग से आत्मा और मन को पवित्र और जलादि से शरीर को शुद्ध रखना। धर्म का छठा लक्षण इन्द्रियनिग्रहः है। इसका अर्थ यह है कि श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों को अधर्म से हटाके धर्म में ही चलाना। सातवां लक्षण धीः है। इसका अर्थ है वेदादि सत्यविद्या, ब्रह्मचर्य, सत्संग करने और कुसंग, दुर्व्यसन, मद्यपानादि त्याग से बुद्धि को सदा बढ़ाते रहना। आठवां धर्म का लक्षण है विद्या जिसका अर्थ है कि **जिसकी सहायता से भूमि से लेके परमेश्वरपर्यन्त का यथार्थ बोध होता है, उस विद्या को प्राप्त करना।** नवम् लक्षण सत्यम् का अर्थ है कि **वेदाध्ययन कर सत्य को जानना, सत्य को ही मानना, सत्य ही बोलना, सत्य को प्राप्त करना। असत्य का त्याग करना व असत्य छोड़ने में तत्पर रहना भी धर्म के नौंवे लक्षण सत्यम् का तात्पर्य वा अर्थ है।** धर्म का अन्तिम दसवां लक्षण अक्रोध है जिसका अर्थ है कि क्रोधादि दोषों को छोड़कर शान्ति आदि गुणों का ग्रहण करना धर्म कहलाता है। इस 10 लक्षणों वाले धर्म का ग्रहण और अन्याय-पक्षपात-सहित आचरण अधर्म, जो कि हिंसा=वैर-बुद्धि, अधैर्य, असहन, मन को अधर्म में चलाना, चोरी करना, अपवित्र रहना, इन्द्रियों को न जीतकर अधर्म में चलाना, कुसंग, दुर्व्यसन, मद्यपान आदि से बुद्धि का नाश करना, अविद्या जोकि अधर्माचरण, अज्ञान है उसमें फंसना, असत्य मानना, असत्य बोलना, क्रोधादि दोषों में फंसकर अधर्मी, दुष्टाचारी होना, ये ग्यारह अधर्म के लक्षण हैं। इनसे सदा दूर रहना चाहिये।

 इन धर्म के दश लक्षणों का इतनी सुन्दरता व एक सूत्रता से किसी अन्य मत-मतान्तर के ग्रन्थ में उल्लेख व वर्णन किया गया हो तो अनुमान नहीं होता। हम केवल दो लक्षणों विद्या व सत्यम् की बात यहां करना चाहते हैं। विद्या शब्द व इसके अर्थों का तो मत-मतान्तरों के विद्वानों को बोध ही नहीं है। विद्या के अर्थ में स्वामी दयानन्द जी द्वारा कहा गया है कि **जिसकी सहायता से भूमि से लेके परमेश्वरपर्यन्त का यथार्थ बोध होता है, वह विद्या है व उसे प्राप्त करना धर्म का एक लक्षण है।** हमें लगता है कि सभी मत-मतान्तरों ने विद्या व इसकी इस परिभाषा की अज्ञानतावश उपेक्षा ही की है व अब भी कर रहे हैं। क्या किसी मत के ग्रन्थ व उसके विद्वान को भूमि से लेकर परमेश्वर तक का यथार्थ बोध व ज्ञान है? वेद, दर्शन व उपनिषद आदि पढ़ने के बाद हमें लगता है कि किसी मत के विद्वान को विद्या शब्द में निहित विषयों का ज्ञान नहीं है। जिस मत में धर्म का प्रमुख अंग **‘विद्या’** ही न हो तो वह मनुष्यों की धर्म विषयक जिज्ञासाओं व आशंकाओं का समाधान नहीं कर सकता। धर्म का एक महत्वपूर्ण लक्षण **‘सत्य’** है। इसका तात्पर्य है कि **वेदाध्ययन कर सत्य को जानना, सत्य को ही मानना, सत्य ही बोलना, सत्य को ही प्राप्त करना। असत्य का त्याग करना व असत्य छोड़ने में तत्पर रहना भी धर्म के नौंवे लक्षण सत्यम् का तात्पर्य वा अर्थ है।** अन्य सभी मतों में हम इस महत्वपूर्ण अंग का भी पूर्ण या अधिकांशतः उपेक्षा ही देखते हैं। वैदिक मत में विद्या व सत्य को गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त है। यहां ऋषि मुनियों ने धर्म विषयक एक एक शब्द, विचार व मान्यता का गम्भीरता से अध्ययन कर, सत्य अर्थों को प्राप्त कर, उसे अपने व्याख्यानों व दर्शन आदि ग्रन्थों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जिन लोगों ने दर्शनों व उपनिषदों को पढ़ा है और साथ ही अन्य मत-मतान्तरों के ग्रन्थों को भी पढ़ा है वह वैदिक धर्म, उपनिषद व दर्शनों की महत्ता सहित शुद्ध मनुस्मृति की महत्ता को भी अन्य सभी मतों के पास ज्ञान की तुलना में श्रेष्ठ जानते व समझते हैं। **उपनिषद, दर्शन व मनुस्मृति के समान विचार व मान्यताओं वाले ग्रन्थ किसी भी मत मतान्तर के पास नहीं है।** ऐसे अनेकानेक ग्रन्थ वैदिक धर्मियों के पास है जिससे वैदिक साहित्य के ओर छोर का पता ही नहीं चलता। ऋषि दयानंद ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है उन्होंने सहस्रों ग्रन्थों को पढ़ा है। उनमें से वह लगभग तीन हजार ग्रन्थों को प्रामाणिक मानते हैं। आज धरती पर शायद एक भी ऐसा विद्वान नही है जिसने ऋषि दयानन्द के समान ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए देश देशान्तर में घूम कर संस्कृत में लिखित इतने ग्रन्थों को देखा, पढ़ा, जाना व समझा हो। अतः वैदिक धर्म श्रेष्ठ व ज्येष्ठ सिद्ध होता है। अन्य मत-मतान्तर इससे काफी दूर दिखाई देते हैं जिसमें सत्य के साथ भी बहुतायत में भरा हुआ है।

मनुष्यों को सर्वश्रेष्ठ का ही ग्रहण करना चाहिये। वेद व वैदिक साहित्य में ईश्वर व जीवात्मा का जो स्वरूप वर्णित किया गया है और उपासना में जिस प्रकार जीवात्मा वा मनुष्य, योगी व भक्त ईश्वर का प्रत्यक्ष व साक्षात्कार करते है, वैसा किसी अन्य मत में धम व उापासना आदि विषयों का न तो यथार्थ वर्णन मिलता है न ही उनके पास सारगर्भित कोई उपासना पद्धति ही है। हमारा सौभाग्य है कि हमारे पास ईश्वर व जीवात्मा का वर्णन करने वाले सैकड़ों व सहस्रों ग्रन्थ हैं जिनका स्वाध्याय व अध्ययन करने का हमें अवसर प्राप्त है जिससे हमें लाभ हुआ है। इससे यह ज्ञान होता है कि वैदिक धर्म ही सत्य व विद्या पर आधारित यथार्थ धर्म है। सभी को ईश्वर की प्राप्ति के लिए इसी की शरण लेनी चाहिये क्योंकि ईश्वर की प्राप्ति वैदिक धर्म रूपी वृक्ष की शीतल छाया में हो सकती है। इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**